शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर, महाराष्ट्र

दूरशिक्षण केंद्र

एम. ए. भाग - २ : हिंदी

सत्र -3 अनिवार्य बीजपत्र- 10

"भारतीय काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना"

सत्र -4 अनिवार्य बीजपत्र- 14

"पाश्चात्य काव्यशास्त्र"

(शैक्षिक वर्ष २०१९-२० से)

Scanned by CamScanner

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण केंद्र

सत्र–3 अनिवार्य बीजपत्र–10

''भारतीय काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना''

सत्र–4 अनिवार्य बीजपत्र–14

''पाश्चात्य काव्यशास्त्र''

एम. ए. भाग–2 हिंदी

Scanned by CamScanner

© कुलसचिव, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2019
एम. ए. भाग 2 (हिंदी : अनिवार्य बीजपत्र-10 और 14)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 500

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. डी. नांदवडेकर
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN-978-93-89327-24-3

★ दूरशिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)
★ दूरशिक्षण विभाग-विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के विकसन अनुदान से इस साहित्य की निर्मिति की है।

Scanned by CamScanner

दूरशिक्षण केंद्र
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर

इकाई लेखक

★	**डॉ. भरत सगरे**	– हिंदी विभाग, लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय, सातारा
★	**डॉ. गजानन भोसले**	– अध्यक्ष, हिंदी विभाग, यशवंतराव चव्हाण आर्टस कॉमर्स ॲण्ड सायन्स महाविद्यालय, पाचवड
★	**डॉ. सुरेश शिंदे**	– अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पद्मभूषण वसंतदादा पाटील महाविद्यालय, तासगाव.
★	**प्रा. महादेव माने**	– अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्रीमती आक्काताई रामगौडा पाटील कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी.
★	**डॉ. एस. पी. चिंदगे**	– देशभक्त आनंदराव ब. नाईक कॉलेज, चिखली, ता. शिराळा, जि. सांगली.
★	**प्रा. डॉ. दिपक तुपे**	– सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, विवेकानंद कॉलेज (स्वायत्त) कोल्हापुर.

■ सम्पादक ■

डॉ. एस. पी. चिंदगे
विभागाध्यक्ष, देशभक्त आनंदराव ब. नाईक कॉलेज,
चिखली, ता. शिराळा, जि. सांगली

डॉ. आर. पी. भोसले
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर एवं
कला, वाणिज्य व शास्त्र महाविद्यालय,
पुसेगांव

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

सत्र–3 : भारतीय काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना

1. संस्कृत काव्यशास्त्र 1

2. अलंकार सिद्धांत, रीति सिद्धांत और वक्रोक्ति सिद्धांत 60

3. ध्वनि सिद्धांत, औचित्य सिद्धांत 86

4. हिंदी आलोचना तथा आलोचक 118

सत्र–4 : पाश्चात्य काव्यशास्त्र

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र - प्लेटो, अरस्तू, लोंजाइनस् 161

2. टी. एस्. इलियट, वर्डसवर्थ, आइ-ए-रिचडर्स 189

3. विविधवाद भाग १ 216

4. विविधवाद भाग २ 240

Scanned by CamScanner

शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर

दूरशिक्षण केंद्र

प्रमाणपत्र

दूरशिक्षण केंद्राकडून तयार करण्यात आलेल्या खालील स्वयंअध्ययन साहित्यामध्ये **डॉ दिपक तुपे, विवेकानंद महाविद्यालय, ताराबाई पार्क, कोल्हापूर** यांनी घटक लेखन केले आहे.

अ. क्र	स्वयंअध्ययन साहित्याचे नाव	आयएसबीएन नंबर	शेरा
१	बी. ए व बी कॉम भाग १ हिंदी (आवश्यक पेपर) : सृजनात्मक लेखन / व्यावहारिक लेखन	978-93-89327-22-9	सत्र १ घटक क्रमांक २ : कविता, कहानी तथा यात्रा वृत्तांत लेखन चे लेखन
२	बी. ए. भाग २ हिंदी : सत्र ३ प्रश्नपत्र ३ अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी गद्य साहित्य / सत्र ४ प्रश्नपत्र ५ रोजगार परक हिंदी	978-93-89327-96-0	सत्र ३ घटक क्रमांक ४ : कथेत्तर साहित्य : अखबारी विज्ञापन (रेडिओ नाटक), वकील साहब, म.गांधी (संस्मरण) चे लेखन
३	एम. ए. भाग २ हिंदी : सत्र ३ भारतीय काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना / सत्र ४ पाश्चात्य काव्यशास्त्र	978-93-89327-24-3	सत्र ३ घटक क्रमांक १, ३ व ४ मध्ये उपघटकांचे लेखन (शब्द शक्ती, शब्द शक्ति के भेद - रस : साधारणीकरण, औचित्य के भेद - प्रमुख आलोचक — नंददुकारे वाजपेयी, नामवर सिंह, रिर्चडस : संप्रेषण सिध्दांत, मूल्य सिध्दांत)

उपेकुलसचिव

संदर्भ : शिवाजी वि./दूशिके/770

दिनांक : 16 DEC 2021

Scanned by CamScanner

४.३.७.३ नंददुलारे वाजपेयी

आचार्य वाजपेयी शुक्लोत्तर समीक्षकों में शीर्षस्थ समीक्षक माने जाते हैं। आ. शुक्ल के उत्तराधिकारी वाजपेयी ने उनकी समीक्षा पद्धति का विकास किया। उन्होंने शुक्ल की कमी और दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अपनी मौलिक मान्यताओं की स्थापना की। यह दृष्टि कहीं पर शुल्क के विरोधी तो कहीं उनके पूरक नजर आती है। आ. वाजपेयी ने 'जयशंकर प्रसाद'(१९३९ ई.), 'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी'(१९३१

Scanned by CamScanner

से १९४० तक के निबंधों का संग्रह), (१९४२ ई.), 'महाकवि सूरदास' (१९५३ ई.), 'प्रेमचंद: एक साहित्यिक विवेचन' (१९५४ ई.), 'नया साहित्य: नये प्रश्न' (१९५५ ई.), 'आधुनिक साहित्य'(१९६० ई.), 'राष्ट्रभाषा की कुछ समस्याएँ' (१९६१ ई.), 'कवि निराला' (१९६५ ई.) और 'प्रकीर्णिका'(१९६५ ई.) आदि महत्त्वपूर्ण किताबों का लेखन किया है।

सैद्धांतिक समीक्षा की दृष्टि से 'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी', 'आधुनिक साहित्य'और 'नया साहित्य: नये प्रश्न' विशेष महत्त्वपूर्ण है। 'आधुनिक साहित्य' समीक्षा ग्रंथ से आ. वाजपेयी जी का आलोचक व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। आ. वाजपेयी का 'नया साहित्यः नए प्रश्न' समीक्षा ग्रंथ आत्मनिरीक्षण अंकित है, जो आलोचनात्मक मनोभूमि समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-सिद्धांतों की चर्चा और साहित्यिक प्रवृत्तियों की गहरी छानबीन परिलक्षित होती है। आ. वाजपेयी 'नया साहित्य: नए प्रश्न' समीक्षा ग्रंथ के 'निकष' भाग में 'समीक्षा' के बारे में लिखते हैं कि 'एक ओर समीक्षा रचना विशेष की अनुचरी मात्र समझी जाती है और दूसरी ओर उसे साहित्य का कठोरता से नियंत्रण करने वाली अभिनेत्री माना जाता है। समीक्षा वस्तुत: इन दोनों से बहुत भिन्न है। वह रचनात्मक साहित्य की प्रिय सखी, सुभैषिणी सेविका और सहृदय स्वामिनी कही जा सकती है।'

आ. वाजपेयी के अनुसार बुद्धितत्त्व के नितांत बहिष्कार, रुग्न और कुंठित मनोवृत्तियों की स्वीकृति और साहित्य के आस्वाद की उदात्तता का अस्वीकार आदि अंधेरी गलियों में ले जाने वाले अशिव तत्त्व है। आ. वाजपेयी ने साहित्य का विवेचन विभिन्न संदर्भों में किया। आ. वाजपेयी के विचारों की केंद्रीय आस्था मानव जीवन की मार्मिक एवं स्वस्थ चेतना रही है। उनकी नंई कविता पर लिखी समीक्षाएँ बौद्धिकतावादी चिंतन के नाम पर भावुकतावादी मजाक बनकर रह गई है। नई कविता के संदर्भ में वे जिद्दी किस्म के आलोचक नजर आते हैं। वे पाश्चात्य और भारतीय साहित्यिक मान्यताओं का संतुलित समन्वय साधते हैं, कल्पना को काव्य का नियामक तत्त्व मानते रहें, साहित्य में सौंदर्य सृष्टि का स्वीकार करते हैं और रस को आनंदात्मक प्रतिक्रिया मानते हैं। इस संदर्भ में 'राष्ट्रीय साहित्य और अन्य निबंध' में वे लिखते हैं-'साहित्य की आत्मा रस, अतंत: क्या है? वह मानव मात्र की वह आनंदात्मक प्रतिक्रिया है, जो श्रेष्ठ साहित्य को पढ़कर उसे उपलब्ध होती है।' आ. वाजपेयी की आलोचना दृष्टि को जानने के लिए- 'हिंदी साहित्य: बीसवीं शताब्दी' समीक्षा ग्रंथ में रेखांकित- कवि की अंतर्वृत्तियों का अध्ययन, कलात्मक सौष्ठव का अध्ययन, शैली का अध्ययन, समय और समाज एवं उनकी प्रेरणाओं का अध्ययन, कवि की जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन, कवि के दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों का अध्ययन और काव्य के जीवन संबंधी सामंजस्य और संदेश का अध्ययन -इन सात सूत्रों को जानना जरूरी है। उन्होंने वैयक्तिक मनोविज्ञान पर आधारित (फ्रायड, एडलर, युंग से प्रभावित), समाजवादी (मार्क्सवादी), समीक्षा, कला-विज्ञानवादी पुरानी परंपरा और उपयोगवादी या नीतिवादी (आई. ए. रिचर्ड्स द्वारा उद्घाटित) इन चार दृष्टियों से समीक्षा की ओर ध्यान आकर्षित किया हुआ दिखाई देता है।

आ. वाजपेयी मूलत: व्यावहारिक समीक्षा के समीक्षक है। प्राचीन शास्त्रीय चर्चा या काव्य विवेचन में उन्होंने अपनी स्वतंत्र दृष्टि का परिचय दिया है। उनकी समीक्षा का मूल दृष्टिकोण ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आधारों पर बना हुआ दिखाई देता है। आ. वाजपेयी ने महाकवि सूरदास, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत,

Scanned by CamScanner

महादेवी वर्मा, अज्ञेय और अंचल पर लिखे समीक्षात्माक लेखों में व्यावाहारिकता प्रदान की हुई दिखाई देती है। वे अपने ही मापदंडों पर कवियों को परखते रहें, मगर शुक्ल जी की तरह प्रयोगवाद और नई कविता को सहानुभूति नहीं दे सके। वे अपने प्रतिमानों में सिकुड़े हुए नजर आते हैं। नए साहित्य की धज्जियाँ उड़ाते हुए उन्होंने काव्यालोचन में निजी रुचि से कार्य किया। नई कविता व्यक्ति-पीड़ा, व्यक्तिवाद, घुटन में सीमित हो जाना आ. वाजपेयी की चिंता का विषय रहा। नए पाठक और आलोचक उनके नई कविता संबंधी विचारों से सहमत नहीं हो पाए। उनकी छायावादी दृष्टि इस काव्य को सहानुभूति नहीं दे पा सकी। उनके छायावादी काव्य प्रतिमान नई कविता के मूल्यांकन में असमर्थ रहें। यही वजह है कि वे मुक्तिबोध और अज्ञेय जैसे बड़े कवियों को न्याय नहीं दे सके। प्रयोगवाद एवं नई कविता की समीक्षा में मूल्यों का अंधापन नजर आता है; जिससे वे प्रभावमूलक समीक्षा के चक्कर में फँस हुए नजर आते हैं।

छायावादी काल में आ. वाजपेयी जी में समीक्षा की नई दृष्टियाँ सामने आती हैं। उनकी सैद्धांतिक दृष्टि छायावादी काव्य की अनुभूतियों और संवेदनाओं के मर्म और मूल्यों का अंकन करती है। उनमें स्वच्छंदतावाद की कल्पना, रसशास्त्र की भावात्मकता, अभिव्यंजनावाद का सौंदर्य दर्शन, रूसो की प्रगतिशील दृष्टि, मनोविज्ञान की नवीन धमक और समाजशास्त्र आदि की झलक दिखाई देती है। इनमें उन्होंने एक ओर स्वच्छंदतावादी प्रतिमानों को अपनाया तो दूसरी ओर रूढ़िग्रस्त शास्त्रीयता को पीछे छोड़ दिया, जिसमें वे प्रबुद्ध नजर आते हैं। मूल्य और सम्मान का हेरफेर उनकी समीक्षा में नजर आता है। राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकता के पक्षधर होने के नाते वे भारतीय समीक्षा दृष्टि के आलोचक नजर आते हैं। उनकी समीक्षा पश्चिम से गृहीत दिखाई देती है। पाश्चात्य स्वच्छंदताधर्मी और अभिव्यंजनावादी चिंतनधारा ने उन्हें काफी प्रभावित किया हुआ दिखाई देता है। इसके दबाव के कारण काव्य - दृष्टि में आत्माभिव्यंजना और व्यक्तिपरकता परिलक्षित होती है। भारतीय अध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता और रहस्यवाद पर जोर देने से आ. वाजपेयी की सैद्धांतिक दृष्टि अंतर्विरोध में फँसी हुई नजर आती है। मध्यकाल में सूरदास और जयशंकर प्रसाद का सौंदर्य दर्शन उन्होंने क्रोचे की दृष्टि से देखा। आश्चर्य की बात यह कि प्रसाद के काव्य संवेदन की कालिदासीय लय को वे कभी-भी समझ नहीं पा सके क्योंकि वे पाश्चात्य प्रतिमानों में भटकते रहें। इस दौड़ में वे न 'कामायनी' को ठीक से समझे और न 'यामा' को। वे पश्चिम की गहराई कभी नहीं समझे जबकि उनके चिंतन में सिर्फ पल्लवग्राही बनते रहें। परिवेश और संस्कार से समझौता करने पर वे समन्वयवादी नजर आते हैं। उनका यही समन्वयवाद अवसरवाद को जन्म देता हुआ नजर आता है। उनकी समीक्षा दृष्टि एक ओर मनोविश्लेषकों का चुपके से समझौता करती है तो दूसरी ओर उन्हें लताड़ती हुई दिखाई देती है। ठीक यही स्थिति प्रगतिवादी आलोचना को लेकर है। उन्हें सौष्ठववादी आलोचक कहना बड़ी भूल होगी। उन्होंने पाश्चात्य जगत् की सौंदर्यवादी दृष्टि का स्वीकार किया। वे मार्क्सवादियों और मनोविश्लेषणवादियों से आजीवन जूझते रहें। ये सब वे स्वच्छंदतावादी समीक्षा के सिद्धांतों को बचाए रखने के लिए करते रहें।

रस चिंतन में उन्होंने व्यापकता लाने का प्रयास किया। आ. वाजपेयी रसानुभूति को 'संवेदना' का विकल्प मानते रहें। यह संवेदना सजग कलाकार की मानसिकता का अनिवार्य रूप है और अपनी इसी दृष्टि से वे 'रसानुभूति' को 'सौंदर्यनुभूति' का विकल्प मानते हुए रसास्वादन की नई भूमिका प्रस्तुत करते रहें। वे 'काव्य तो प्रकृत मानव अनुभूतियों का नैसर्गिक कल्पना के सहारे, ऐसा सौंदर्यमय चित्रण है जो मनुष्य मात्र

Scanned by CamScanner

में स्वभावत: अनुरुप भावोच्छवास और सौंदर्य-संवेदन उत्पन्न करता है। इसी सौंदर्य संवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली में रस कहते हैं।' वे रसवादी आलोचक है। वे सृजन प्रक्रिया में साधारणीकरण सिद्धांत को नए संदर्भों में परिभाषित करते हैं। इसमें उन पर एक ओर वे कांट और हीगेल का प्रभाव है तो दूसरी ओर कीट्स और टी. एस. इलियट का। वे पाश्चात्य साहित्य विवेचन के नए अनुसंधान के प्रति विशेष सतर्क हैं। उन्होंने प्रतिभा, व्यत्पत्ति और अभ्यास को काव्य हेतु के रूप में स्वीकार किया और प्रतिभा को काव्य का प्रमुख हेतु माना और व्यत्पत्ति और अभ्यास को उसका संस्कारक हेतु माना। इस संदर्भ में वे लिखते हैं-'जीवन की इस विशालता का निर्माण स्वत: एक महत्मार्ग है। ऊंची साहित्यिक प्रतिभा द्वारा ही यह संभव है।' उनका कहना था कि सृजन शक्ति ही विशाल एवं जीवंत जीवनानुभूतियों को कविता में डालती है। आश्चार्य इस बात का है कि वे प्रतिभा के विकल्प में कल्पना को मानते हैं। काव्य प्रयोजन पर वे लिखते हैं-'साहित्य का प्रयोजन आत्मानुभूति है... आत्मानुभूति साहित्य का प्रयोजन है, इसका अर्थ हम यह लेते हैं कि आत्मानुभूति की प्रेरणा से ही साहित्य की सृष्टि होती है।'

'साधारणीकरण'का स्वरूप स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि 'साधारणीकरण का अर्थ रचयिता और उपभोक्ता (कवि और दर्शक) के बीच भावना का तादात्म्य ही है। साधारणीकरण वास्तव में कवि कल्पित समस्त व्यापार का होता है। केवल किसी पात्र विशेष का नहीं। इस तथ्य को न समझने के कारण ही साधारणीकरण के प्रश्न पर अनेक निरर्थक विवाद होते रहे हैं।' उनको सांप्रदायिक कठोरता, साहित्यिक एवं काव्यात्मक मूल्यों की अनभिज्ञता और प्रतिमानों से उत्पन्न अव्यवस्था बेचैन करती रही।

सारांश यह कि आ. वाजपेयी पाश्चात्य और भारतीय सिद्धांतों के सुंदरतम तत्त्वों का समन्वय चाहते थे। वे साहित्यशास्त्र की मान्यताओं को व्यापक अर्थ देना चाहते थे। दरअसल आ. वाजपेयी, आ. शुक्ल की परंपरा का कई अंतर्विरोधों से भरा आलोचक है। वे देश-विदेश से काफी प्रभावित है, जिससे उनकी समीक्षा दृष्टि मौलिक दिखाई नहीं देती। मार्क्सवादी और मनोविश्लेषवादी समीक्षा के दुर्बल और सबल पक्षों का वे जमकर विरोध नहीं करते।

उन्होंने कवि की अंतर्वृत्तियों का सामाजिक एवं मानवीय संवेदना की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण किया। सृजन प्रक्रिया का स्वरूप, सृजन प्रेरणा, सृजनानुभूति का स्वरूप, काव्य अधिकारी, काव्य के उपादान, माध्यम, घटक तत्त्व या काव्य कृति के समग्र सौंदर्य का मूल्यांकन, सृजन-प्रक्रिया और कवि कर्तृत्व, सृजन अवधारणा, सृजन शक्ति आदि सैद्धांतिक समीक्षा के विभिन्न पक्षों पर उन्होंने गंभीर चिंतन जरूर किया है, मगर उसमें पाश्चात्य विचारों की गहरी छाप दिखाई देती है। उन्होंने व्यक्तिवादी कला दर्शन का खंडन-मंडन किया और कलावादी मूल्यों को सामाजिकता के साथ जोड़ दिया।

संक्षेप में आ. वाजपेयी का समाज सापेक्ष रसवाद लोक-संवेदना, लोक अभिरुचि, लोकधर्मी संस्कार का ही संस्कृत रूप है; जिसमें समसामयिकता एवं आधुनिकता, शास्त्रीयता और व्यावहारिकता, स्वच्छंदता एवं परंपरा का समन्वय दिखाई देता है।

Scanned by CamScanner

४.३.७.५ डॉ. नामवर सिंह

नामवर सिंह आलोचना के प्रतिष्ठापक और प्रगतिशील आलोचना के प्रमुख हस्ताक्षर थे। वे 'वाचिक ही मौलिक है' में अपार विश्वास करते रहें। उन्होंने अपनी आलोचक समाजवादी जीवन दृष्टि से नई कविता को सकारात्मक दिशादर्शन किया और अपनी नव्य दृष्टि से आलोचना क्षेत्र को नया प्रकाश दिया। उन्होंने अपने युगबोध की विस्तृत विचारधारा प्रतिनिधित्व किया। क्रांतिकारी, मार्क्सवादी दर्शन के व्यक्तित्व से परिपूर्ण आलोचक नामवर सिंह ने आलोचना विधा को नवीन प्रतिमानों का आलोक प्रदान किया तथा उसे सृजनात्मक और रचनात्मक पृष्ठभूमि प्रदान की। उन्होंने 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग' (१९५२) और 'पृथ्वीराज रासो की भाषा'(१९५९) आदि शोध ग्रंथ लिखे। उन्होंने 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' (१९५४), 'छायावाद' (१९५५), 'इतिहास और आलोचना' (१९५७), 'कहानी: नयी कहानी'(१९६४), 'कविता के नये प्रतिमान' (१९६८), 'दूसरी परंपरा की खोज' (१९८२) और 'वाद-विवाद संवाद'(१९८९) आपकी प्रमुख आलोचनात्मक रचनाएँ हैं। उन्होंने साक्षात्कार-'कहना ना होगा' (१९९४), 'बात बात में बात'(२००६); पत्र संग्रह-'काशी के नाम' (२००६); व्याख्यान-'आलाचेक के मुख से' (२००५) आदि किताबों का लेखन किया है और हिंदी की दो पत्रिकाओं 'जनयुग' (साप्ताहिक) और 'आलोचना' (त्रैमासिक) का संपादन किया है।

नामवर सिंह ने अपनी आलोचना कृति में सबसे पहले छायावाद की समीक्षा की। तत्कालीन समय में छायावादी कविता पर पलायनवादी और व्यक्तिपरक होने के आरोप हो रहे थे, मगर नामवर सिंह ने छायावादी कवियों को व्यक्तिवाद से बाहर निकालकर सामाजिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ जोड़ दिया। यह उनके मार्क्सवादी आलोचना का कलात्मक रूप माना जा सकता है। इसमें उनकी शैली में ताजगी और सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय मिलता है। इसलिए तो दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में आयोजित 'नामवर संग बैठकी' कार्यक्रम में लेखक विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा कि 'अज्ञेय के बाद हिंदी का सबसे बड़ा 'स्टेट्समैन' कहा था।'

वर सिंह ने 'कविता के नये प्रतिमान' आलोचना ग्रंथ में नई कविता और काव्य मूल्यों को प्रश्नों के कटघरे में खड़ा किया। इसी कारण उन पर रूपवाद को उभारने के आरोप लगते रहें। 'कविता के नये प्रतिमान'

में उन्होंने एक ओर कविता के नवीन प्रतिमानों का प्रयोग किया तो दूसरी ओर इसके केंद्र में मुक्तिबोध की रचनाओं को पेश किया और मुक्तिबोध को एक मॉडल के रूप में प्रयोग किया। 'कविता के नये प्रतिमान' की भूमिका में आलोचक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं-'मूल्यवान है एक भी ऐसे आलोचक का होना जो किसी भी चीज को तब तक अच्छा न कहे, जब तक उस निर्णय के लिए अपना सब कुछ दाँव पर लगाने के लिए तैयार न हो।' उनका मानना था कि एक आलोचक को सत्यनिष्ठ होना चाहिए और निष्पक्ष एवं मुक्त भाव से मूल्य सापेक्ष वर्णन करना चाहिए। नामवर सिंह रेमंड विलियम्स के माध्यम से कहते हैं-'आलोचक का धर्म है उस विकल्प के अवकाश को जहाँ वह है, रेखांकित करें, जैसे भूगोल का आदमी किसी प्राचीन जमीन पर उस जगह को बताता है कि वह यहाँ है। सत्ता की सर्वग्राही संस्कृति के बरक्स आलोचक उस विकल्प के अवकाश की तलाश करता है। विकल्प का आवकाश उस स्वतंत्र लोक की खोज है जहाँ खड़े होकर उसे स्वयं आलोचना कर्म में प्रवृत्त होना है।' इसी कारण भाई काशीनाथ सिंह ने कहा है कि 'हिंदी आलोचकों में भी ऐसी लोकप्रियता किसी को नहीं मिली जैसी नामवर जी को मिली।' 'कविता के नये प्रतिमान' ग्रंथ के कारण वे समकालीन कविता के गंभीर विश्लेषक रूप में प्रस्तुत हुए। इसमें उनकी सूक्ष्म निरीक्षण और अचूक पहचान की क्षमता से परिलक्षित होती है।

'इतिहास और आलोचना' ग्रंथ में उन्होंने साहित्यिक मूल्यों को प्रस्तुत किया। इसमें शामिल निबंधों को पुनर्मूल्यांकनपरक आलोचना और साहित्य इतिहास के बीच संबंधित किया है। उन्होंने 'कहानी: नयी कहानी' में नई कहानी की समीक्षा रेखांकित की है। इसमें कथा-समीक्षा को लेकर नए प्रतिमानों की खोज की गई है। प्रस्तुत ग्रंथ आलोचना विधा का नया एस्थैटिक खोजने का प्रयास करता है, जो कहानियों की आलोचना में सफल हो चुका है। यह ग्रंथ समकालीन कहानी संबंधी प्रखर निबंधों के संकलन है। प्रस्तुत ग्रंथ ने हिंदी में पहली बार कहानी समीक्षा की एक पद्धति सामने लाया। कहानी को अखंड इकाई के रूप में पढ़ने-समझने की अनुशंसा बहुमूल्य साबित हो गई।

'दूसरी परंपरा की खोज'और 'वाद विवाद संवाद' पुस्तकें हिंदी आलोचना की श्रेष्ठ उपलब्धि है। 'दूसरी परंपरा की खोज' ग्रंथ में उन्होंने हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व के साथ उनके जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला है। इस संदर्भ में उनका कहना था कि 'दूसरी परंपरा का मतलब दूसरी परंपरा नहीं बल्कि एक और परंपरा है। वह गणना के क्रम में दूसरी नहीं थी।' इस किताब में उन्होंने भारतीय संस्कृति की लोकोन्मुखी परंपरा की खोजबीन की हुई प्रतीत होती है। साथ ही इसमें उनकी इतिहास दृष्टि और रचनाधर्मिता का समग्र आलोचनात्मक विश्लेषण दिखाई देता है। उन्होंने प्राचीन एवं आधुनिक आलोचना के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन किया और नए आलोचना सिद्धांतों की सृष्टि की। इस संदर्भ में कवि लीलाधर मंडलोई ने कहा है कि 'नामवर सिंह आधुनिकता में पारंपरिक हैं और पारंपरिक में आधुनिक।' उन्होंने आलोचकों और कवियों की आलोचना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यहाँ तक कि उन्होंने आलोचकों की आलोचना की। वस्तुनिष्ठ आलोचना करने से वे तीखे आलोचक भी रहें। उनकी खासियत यह रही कि किसी भी विषय पर वे सोच-विचार कर अपनी राय देते रहें। आलोचना की चीरफाड़ में में वे स्वस्थ और पूर्वग्रहरहित दृष्टिकोण अपनाते रहें और नए दृष्टि से विचार देते रहें। वे विचारों में प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते रहें और चौकन्ना

Scanned by CamScanner

स्थापनाओं के लिए प्रसिद्ध रहें। उनकी स्थापनाएँ जितनी जिवंत और मौलिक होती हैं, उतनी ही विवादास्पद रही। इस संदर्भ में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने कहा था-'नामवर सिंह की आलोचना जीवंत आलोचना है। भले ही लोग या तो उनसे सहमत हुए अथवा असहमत, लेकिन उनकी कभी उपेक्षा नहीं हुई।'

'आलाचेक के मुख से' किताब में नामवर सिंह के पांच आख्यान पटना में प्रगतिशील लेखक संघ के मंच से विभिन्न अवसरों पर दिए गए उन्हीं व्याख्यानों का संपादन है। नामवर जी खुद हिंदी के सर्वोत्तम वक्ता थे। उनके व्याख्यान में भाषा प्रवाह और विचारों की लय साथ-साथ चलती थी। वे अपने व्याख्यान में हमेशा अनावश्यक प्रसंग एवं तथ्य से बचते रहें और रोचकता हमेशा ध्यान में रखते रहें। इसमें आज के साहित्य, विचारधारा, सौंदर्य, राजनीति और आलोचना से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातें कही गई है। उनका मानना है कि साहित्य की भाषा में जो 'सृजनशीलता' आती है, वह लोकभाषा से आती है। लोकभाषा सृजनशील होती है, सृजनात्मक होती है। उसी से शक्ति लेकर साहित्य अपने रूढ़ घिसे हुए प्रतीकों और रूपकों से मुक्त होता हुआ सृजनशीलता की ओर अग्रसर होता है।.. उत्पादक और सृजन एक ही सिक्के दो पहलू हैं। इसलिए जो सामाजिक मूल्यों, नैतिक मूल्यों और आर्थिक मूल्यों का निर्माता होता है, वही सौंदर्य के मूल्यों का, कला के मूल्यों का भी निर्माता है।फ जिस तरह बाबा नागार्जुन अपनी कविताओं के माध्यम से जनतांत्रिक संवेदना जगाने का काम करते थे ठीक उसी प्रकार नामवर जी वैचारिक लड़ाई लड़ते रहें, रूढ़िवादिता, अधंविश्वास, कलावाद और व्यक्तिवाद के खिलाफ चिंतन की प्रेरणा देते रहें। वे मार्क्सवाद को अध्ययन एवं चिंतन की पद्धति के रूप में, समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में, जीवन और समाज को मानवीय बनाने वाले सौंदर्य सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते रहें। मार्क्सवाद में उनकी आस्था जरूरी थी मगर उसकी जड़ताओं पर वे प्रहार करते रहें। वे अपनी परंपरा अपने अंदर लेकर चलने वाले प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय आलोचक थे। वे अभूतपूर्व प्रतिष्ठा के धनी, अप्रतिम विद्याप्रेमी, संवेदनशील एवं बहुपठित आलोचक रहे हैं। 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से वे पाठकों से संवाद करते रहें। उनकी आलोचना पाठकों को साथ लेकर चलती है। आलोचना की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसकी रसग्राहिका शक्ति; जिसके बलबूते वे रचना की तह में प्रवेश करते रहें।

नामवर सिंह के अनुसार-राजनीतिक व्यक्तित्व के अभाव में सार्थक साहित्य की रचना असंभव है। इतिहास को रचना के अंदर ही समझना चाहिए। उन्होंने अपने आलोचनात्मक विचार को ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में-'इतिहास के अंदर केवल संबंध भावना नहीं, बल्कि साहित्य का एक निश्चित प्रतिमान है, इसलिए अंततः समीक्षा का प्रतिमान है। ऐतिहासिक बोध वस्तुतः आलोचनात्मक बोध है-ऐसा आलोचनात्मक बोध जिसे आत्म परीक्षा के लिए प्रत्येक साहित्य सतत् परखता चलता है। इसलिए इतिहास की अनेक अंतर्धाराओं में से हर युग अपने लिए एक प्रासंगिक धारा का अन्वेषण, तदुपरांत निर्माण करता है।' उन्होंने आलोचना के दोनों तटों की विजय पताका फहराई है। वे जड़ मार्क्सवाद, फूहड़ समाजशास्त्र का विरोध करते है तो दूसरी ओर साहित्य में व्याप्त संकीर्ण संस्कृतिवाद को चुनौती देते हैं। एक ओर अनुभूतिवाद की सीमा रेखांकित करते है तो दूसरी ओर विचारधारा, प्रासंगिकता के टूट पूँजिया मध्यवर्गीय लेखकों को फटकारते हैं। उनकी रचनाओं में कुशल रचनाकार, कुशल निबंधकार, व्यंग्यकार समाहित हैं।

Scanned by CamScanner

उनकी रचनाओं में भावुकता, मार्मिकता, सहजता, अनुभूति की व्यापकता दिखाई देती है। खास बात यह कि उनके पास एक रचनाकार की अनुभूति थी, इसी कारण वे एक सहृदय आलोचक हैं।

सार यह कि नामवर सिंह हिंदी के सर्वाधिक सुपठित और जिंदादिल आलोचक हैं। वे वास्तव में आलोचक थे। वे हिंदी आलोचना के शलाका पुरुष थे। उनकी आलोचना का दायरा बहुत ही व्यापक है। उन्होंने हिंदी आलोचना को एक नई पहचान दिलाई। वे गहन चिंतक, अध्ययनशील प्रवृत्ति के आलोचक, मननशील साहित्य मनीषी, उच्चकोटि की अनुसंधानपरक समाजवादी दृष्टि की समझ होने वाले पत्रकार, अनुवादक, लोक शिक्षक और आलोचक रहें। वे हमेशा अपनी बात अपनी भाषा में करते रहें।

Scanned by CamScanner

४.१० अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

१. हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ. शिवकुमार शर्मा।

२. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सैना।

३. नई रचना और रचनाकार - डॉ. दयानंद शर्मा।

४. 'चिंतामणि भाग-१, २' - आचार्य रामचंद्र शुक्ल।

५. 'चंद्रगुप्त' नाटक - जयशंकर प्रसाद।

६. हिंदी आलोचना का सैद्धांतिक आधार-कृष्णदत्त पालीवाल।

७. काव्यशास्त्र भारतीय एवं पाश्चात्य-डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी।

८. नामवर के विमर्श-सं. सुधीश पचौरी।

९. आलोचक नामवर सिंह-सं. रणधीर सिन्हा।

१०. आलोचना के रचना पुरुष: नामवर सिंह - सं. भारत यायावर।

११. नामवर की धरती-श्री प्रकाश शुक्ल।

१२. जे.एन. यू. में नामवर सिंह-सं. सुमन केसरी।

१३. नामवर सिंह: आलोचना की दूसरी परंपरा (२००२)-सं. कमला प्रसाद।

१४. 'पहल' का विशेषांक, मई १९९८ ई.-सं. ज्ञानरंजन।

१५. 'पाखी' का विशेषांक, अक्तूबर, २०१० -सं. प्रेम भारद्वाज।

१६. 'बहुवचन' का विशेषांक, जुलाई-सितंबर-२०१६।

□□□

Scanned by CamScanner